ओ३म्

वेद-विमर्श

लेखक :
डॉ० रामप्रकाश
एम०एससी० (ऑनर्ज) पीएच०डी०
रसायन विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय
चण्डीगढ़

सम्पादक :
डॉ० राजेन्द्र विद्यालंकार

प्रकाशक :
सत्यार्थ प्रकाशन,
६१०/१३, हाऊसिंग बोर्ड कॉलोनी,
कुरुक्षेत्र (हरियाणा)

आर्यसमाज के नियम

1 सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।

2 ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है उसी की उपासना करनी योग्य है।

3 वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम-धर्म है।

4 सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

5 सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिए।

6 संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

7 सबसे प्रीति पूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिए।

8 अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।

9 प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिए किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

10 सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।

वेद-विमर्श

कभी समस्त संसार में वेद का प्रचार था। फिर धीरे-धीरे वैदिक सूर्य को अविद्या के बादलों ने ढक लिया। विश्व में अनेक मत फैल गए। ऐसे अन्धकारमय युग में देव दयानन्द ने वेदों का पुनरूद्धार किया तथा इन्हें सब सत्य विद्याओं का पुस्तक बताया। ऋषि ने वेद विषय में जो कार्य किया वह स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य है। परन्तु आज भी अन्य मतावलम्बी वेद विषय में अनेक भ्रान्तियाँ फैला कर अपना स्वार्थ सिद्ध कर रहे हैं। उन भ्रान्तियों को दूर करने के लिए यहाँ हम कुछ प्रारम्भिक प्रश्नों पर विचार करेंगे।

ईश्वरीय ज्ञान की आवश्यकता

मनुष्य ज्ञान किस प्रकार प्राप्त करता है? – इस प्रश्न पर दार्शनिकों ने पर्याप्त विचार किया है। कुछ पाश्चात्य विचारकों के अनुसार मनुष्य स्वयमेव ज्ञान प्राप्त कर लेता है। ज्ञान प्राप्ति के लिए उसे किसी सहायक की आवश्यकता नहीं होती। इन्हीं विचारकों में से कुछ ज्ञान की प्राप्ति अनुभववाद[१] के द्वारा मानते हैं। लॉक के मन्तव्यानुसार मनुष्य का मस्तिष्क एक कोरे कागज के समान है तथा ज्ञान प्राप्ति के साधन संवेदना (अनुभूति)[२] तथा चिन्तन[३] हैं। वर्कले और ह्यूम ने भी इसी मत का प्रतिपादन किया है। पर यदि मन को कोरे कागज़ के समान मान लिया जाए तो वह निष्क्रिय बन जाता है। ऐसा मानना मनोवैज्ञानिक भूल है क्योंकि मन गतिशील है तथा इसमें प्रत्येक क्षण कोई न कोई विचार आता रहता है। डैकार्ट, स्पिनोज़ा तथा लाइबनिज ज्ञान की उत्पत्ति बुद्धिवाद के द्वारा मानते हैं। परन्तु एल्डस हक्सले का यह विचार भी ठीक ही है कि "बुद्धिवाद जीवन की गुत्थियों को सुलझाने में पूर्णतया समर्थ नहीं है।"[४] जर्मन दार्शनिक कान्ट के विचार में ज्ञान की प्राप्ति अकेले अनुभव या बुद्धि से सम्भव नहीं है अपितु बुद्धि और अनुभव दोनों को मिला कर ही ज्ञान प्राप्त हो सकता है।

वस्तुतः ये सभी मत केवल कुछ अंश तक ही सत्य हैं क्योंकि यदि कोई सिखाने वाला न हो तो मनुष्य ज्ञान प्राप्त कर ही नहीं सकता। इस विचार की पुष्टि में कुछ उदाहरण लीजिए —

...कि उसने चन्द्रमा पर

जाने की यात्रा पूरी कर ली है पर अभी भी अन्डेमान में निग्रोटा वर्ग के लोग रहते हैं जिन्हें अच्छी प्रकार गिनना भी नहीं आता। दस तक गिनने वाला तो गणितज्ञ समझा जाता रहा है। वहाँ भी उत्खनन (भूखनन) पर भाले आदि लोहे के अस्त्र-शस्त्र मिले हैं अतः वे लोग सदा से मूर्ख नहीं हैं। कभी वे भी सभ्य थे। आज उनकी यह दशा शिक्षक के अभाव में हो गई है। अतः युगपुरुष ऋषि दयानन्द ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका (वेदोत्पत्ति विषयः) में ठीक ही लिखा है –"सृष्टि के आदि में भी परमात्मा जो वेदों का उपदेश नहीं करता तो आज पर्यन्त किसी मनुष्य को धर्मादि पदार्थों की यथार्थ विद्या नहीं होती।"

२. अनेक भाषाओं के ज्ञाता माता-पिता की संतान भी बिना सिखाए कोई भाषा नहीं सीख सकती। अतः बच्चों को ज्ञान देने के लिए पाठशालाओं का खोलना इस बात का प्रबल प्रमाण है कि शिक्षक के बिना बच्चा अकेले अनुभव अथवा बुद्धि के द्वारा ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता।

३. आज तक किसी भी अनपढ़ व्यक्ति ने वैज्ञानिक खोज नहीं की क्योंकि बिना शिक्षक के ज्ञान की प्राप्ति असम्भव है।

४. ए० डब्ल्यू० किंगलेक जब मिश्र के महामरुस्थल में से निकल रहे थे तो उन्हें विज्ञान के इस युग में भी शेख नाम के सज्जन मिले जिसे यह ज्ञात नहीं था कि समय का विभाजन घण्टों, मिनटों तथा सैकिण्डों में हो चुका है क्योंकि किसी ने उसे ये बातें बताईं ही नहीं थीं।

५. लगभग नब्बे वर्ष पूर्व जिला अम्बाला में सम्मू नाम के एक बच्चे ने जन्म लिया। उसे स्कूल में उर्दू पढ़ने के लिए भेजा गया। अभी उसने उर्दू वर्णमाला ही सीखी थी कि उसे लेखक के पैतृक गाँव का एक व्यक्ति नौकर के रूप में अपने पास ले आया। वहाँ उस बच्चे को पशु की भाँति रखा गया। उसे हर प्रकार के ज्ञान से वंचित रख कर पशुओं के ढंग से खाना–पीना सिखाया गया। बाद में सम्मू निकट के ही एक अन्य गाँव (झरोली खुर्द) में वर्षों नौकर रहा। उस परिवार के सदस्य पुलिस एवं सेना में उच्चाधिकारी थे पर सम्मू को आरम्भ से ही कोई ज्ञान नहीं दिया गया अतः वह लगभग नंगा ही रहता था। जहाँ सोता, उसी स्थान पर पेशाब आदि कर देता। उसे अपने स्वामी तथा उस गाँव का नाम भी नहीं आता था। वह मनुष्य योनि में पशु था।

सम्राट फ्रेडरिक द्वितीय, स्काटलैण्ड के जेम्स चतुर्थ तथा अकबर आदि अपने परीक्षणों के पश्चात् इसी निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि शिक्षक के बिना मानव ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता ।

अतः सिद्ध हुआ कि मनुष्य में ज्ञान प्राप्ति की शक्ति है अन्यथा सम्मू उर्दू वर्णमाला न सीख सकता । पर आरम्भ में सदैव शिक्षक की आवश्यकता पड़ती है। हाँ, कुछ ज्ञान प्राप्त कर लेने के पश्चात् उस निजी ज्ञान को अनुभव और बुद्धि के द्वारा बढ़ाया जा सकता है। आरम्भ में ही ज्ञान का विकास सम्भव नहीं क्योंकि विकास एक क्रिया है तथा मनोविज्ञान के अनुसार क्रिया से पूर्व अनुभूति और अनुभूति से पूर्व ज्ञान की आवश्यकता होती है। अतः डॉक्टर रसेल वैलेस लिखते हैं – "ज्ञान के क्रमिक विकास का कोई भी प्रमाण नहीं है।"[५]

सृष्टि के आरम्भ में मनुष्य में नैमित्तिक ज्ञान न होने के कारण ईश्वर स्वयमेव जन–कल्याण हेतु आवश्यक ज्ञान का प्रकाश करते हैं। जिस प्रकार परमात्मा ने आँख की सहायता के लिए सूर्य बनाया है उसी प्रकार बुद्धि के लिए ज्ञान रूपी सूर्य प्रदान किया है। जैसे सूर्य के बिना आँख व्यर्थ है उसी प्रकार ज्ञान के बिना बुद्धि किस अर्थ ? वैसे भी प्रत्येक कारीगर अपनी बनाई वस्तु के उपयोग का ज्ञान देता है। अतः प्रभु द्वारा आरम्भ में जगत् की वस्तुओं के उपयोग का ज्ञान दिया जाना अनिवार्य है। परमात्मा न्यायकारी है इसलिए मनुष्य को कर्मानुसार फल देने से पूर्व यह बताया जाना आवश्यक है कि पाप–पुण्य क्या है ? इन सभी का ज्ञान आदि सृष्टि में प्रभु अपनी कल्याणी वेदवाणी के द्वारा प्रदान करते हैं।

दार्शनिकों ने भी ईश्वरीय ज्ञान की आवश्यकता को अनुभव किया है। अफलातून के अनुसार "धार्मिक कर्मों की शिक्षा, अंधकारों को दूर करने तथा जीवन यात्रा को सुगम बनाने के लिए ईश्वरीय ज्ञान की आवश्यकता है।" सिसरो का कथन है –"वास्तविक सत्य ज्ञान के लिए ईश्वरीय ज्ञान की जरूरत है।" काण्ट के विचारानुसार "धर्म और सदाचार सम्बन्धी नियमों के ज्ञानार्थ ईश्वरीय ज्ञान की आवश्यकता है।" इसी प्रकार फलिण्ट ने भी स्वीकार किया है–"मुक्ति के लिए जिस ज्ञान की आवश्यकता है वह आत्मा और प्रकृति से प्राप्त नहीं होता। बुद्धि के गूढ़तम आविष्कारों के

जाता है।" पातञ्जल योग सूत्र (१.२६) में परमात्मा को सब का गुरु बताया गया है–

स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् ।

ईश्वरीय ज्ञान की पहचान

सभी मतावलम्बी अपनी पुस्तकों को ईश्वरीय ज्ञान मानते हैं। पर कथन मात्र से ही कोई बात सत्य तो नहीं हो जाती। लक्षण प्रमाणाभ्यां वस्तु सिद्धिः न तु प्रतिज्ञा मात्रेण। इस विषय में सच्चाई का निर्णय करने के लिए विद्वान् निम्नलिखित कसौटियों का सहारा लेते रहे हैं–

१. ईश्वरीय ज्ञान सृष्टि के आरम्भ में होना चाहिए क्योंकि ज्ञान के बिना कोई व्यवस्था चल नहीं सकती। वैसे भी यदि परमात्मा अपना ज्ञान कुछ समय पश्चात् दे तो ज्ञान से वंचित रहने वाले प्राणियों के साथ अन्याय होता है। अतः जर्मन कवि गेटे ने दीवान की भूमिका में ठीक ही लिखा है– "संसार के प्रभात काल में परमात्मा मानव को ज्ञान देता है।" कुरान और बाईबल की आयु बहुत कम है। वेद ही सब से प्राचीन है। इस तथ्य को अन्य धर्मावलम्बी भी स्वीकार करते हैं। 'हम भारत से क्या सीख सकते हैं' नामक पुस्तक में मैक्समूलर लिखता है–"वेद से पहले का कोई हस्तलिखित ग्रन्थ नहीं मिलता। हम इसे वर्षों में नहीं माप सकते अर्थात् वेद अनादि काल से है।" उसका यह मत है कि "आर्य जगत में वेद निश्चय ही सबसे पुरानी पुस्तक है।"[६] बाल साहिब ने स्वीकार किया है कि "हिन्दुओं का धर्म ग्रन्थ ऋग्वेद संसार का सबसे प्राचीन ग्रन्थ है।"[७] प्रो० हीरेन ने लिखा है–"निस्संदेह वेद संस्कृत साहित्य में सबसे पुराने हैं।"[८] इसी सत्य के समर्थन में पादरी फिलिप ने लिखा है–"पुराने वसीयतनामे के इतिहास और पुस्तकों के निर्माण काल सम्बन्धी अनुसन्धान के पश्चात् अब हम निस्संदेह ऋग्वेद को न केवल आर्य जाति की अपितु समस्त विश्व की प्राचीनतम पुस्तक कह सकते हैं।"[९]

२. ईश्वरीय ज्ञान का प्रकाश आदि सृष्टि में होता है। अतः उसमें इतिहास नहीं हो सकता पर बाईबल में पैलस्टाइन के यहूदियों का इतिहास है तथा कुरान अरब देश के दृश्यों और आदम, ईसा, मूसा, दाऊद के किस्सों से भरा पड़ा है। केवल वेद ही ऐसी पुस्तक है जिसमें किसी देश, काल तथा जाति का इतिहास नहीं है। वेद में विश्वामित्र, वशिष्ठ, उर्वशी आदि शब्द आए हैं। इन्हीं शब्दों को देखकर पाश्चात्य लेखकों ने वेद के

गले भी इतिहास गढ़ा जाता है। बुद्धि का य[illegible] निघण्टु विद्वानों को भी है। पर वास्तविकता यह है कि वेद के शब्दों से ही सभी वस्तुओं के नाम रखे गए हैं। अतः वस्तुओं और विषयों के नाम वेद में देख कर इतिहास की कल्पना तो ऐसी है जैसे आज के समय का कोई रामचन्द्र नामक व्यक्ति कहे कि लाखों वर्ष पूर्व दशरथ ने अपने पुत्र का नाम रामचन्द्र मेरे ही नाम को सुन कर रखा था तथा रामायण में मेरी ही चर्चा है। वस्तुतः वेद में आए ये शब्द व्यक्ति विशेष के सूचक नहीं अपितु सामान्य गुण सूचक हैं क्योंकि केवल विशेषण के साथ ही 'तर' 'तम' प्रत्यय लग सकते हैं तथा वेद में ऐसे कई शब्दों के साथ इन प्रत्ययों का प्रयोग किया गया है जैसे कण्वतम (ऋ० १.८४.४; १०.१५५.५) तथा इन्द्रतम (ऋ० १.१८२२; ७.७६.६)। यदि कण्व और इन्द्र व्यक्तिवाचक संज्ञा होते तो 'तम' प्रत्यय नहीं लग सकता था। कुछ शब्द तो भिन्न–भिन्न मन्त्रों में अलग–अलग अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं। उदाहरणार्थ वशिष्ठ शब्द ले लीजिए। यह वेद में कई स्थानों पर आया है, जैसे –

शतं या भेषजानि सहस्रं संगतानि च ।
श्रेष्ठमास्राव भेषजं वशिष्ठं रोगनाशनम् ।। अथर्व २.४४.२

अर्थात् "जितनी सैंकड़ों और हजारों दवाईयाँ पाई जाती हैं उन में चुलाने की औषध वशिष्ठ श्रेष्ठ और रोगनाशक है।" यहाँ वशिष्ठ शब्द किसी व्यक्ति विशेष के लिए नहीं आया अपितु यह तो ओषधि का नाम है। यजुर्वेद के १६वें अध्याय के ५४वें मन्त्र में वशिष्ठ का अर्थ प्राण है। यह शब्द शतपथ ब्राह्मण (८.१.१.६) में भी इस अर्थ में प्रयोग किया गया है–प्राणौ वै वशिष्ठ ऋषिः अर्थात् प्राण ही वशिष्ठ ऋषि है। ऋग्वेद के एक मन्त्र (७.३३.११) में वशिष्ठ शब्द पानी के अर्थ में आया है। इस प्रकार कई शब्द भिन्न–भिन्न स्थानों पर अलग–अलग आशय प्रकट करते हैं। एक शब्द के अनेक अर्थ होना भाषा का दूषण नहीं अपितु भूषण है। ये शब्द लौकिक नहीं अपितु यौगिक हैं और इनके आधार पर वेद में इतिहास सिद्ध नहीं किया जा सकता। और तो और वेदों में इतिहास की दुहाई देने वाले मैक्समूलर ने भी यह माना है कि "वेदों में अनेक नाम पाए जाते हैं परन्तु वे व्यक्तिवाचक संज्ञाओं के रूप में नहीं दीख पड़ते।"[१०]

३. ईश्वरीय ज्ञान बुद्धि के लिए है अतः बुद्धि तथा सृष्टि नियमों के अनुकूल होना चाहिए। ईश्वरीय ज्ञान का प्रकाश सृष्टि के रहस्यों को

है। अतः उस ज्ञान तथा सृष्टि के नियमों में भिन्नता नहीं होनी चाहिए क्योंकि भूगोल की वही पुस्तक श्रेष्ठ है जो भूगोल के साथ मिलती हो। पर बाईबल की कितनी बातें बुद्धि तथा सृष्टि के नियमों के प्रतिकूल हैं। इसीलिए विज्ञान और ईसाईयत में टक्कर रही है। बाईबल विरोधी अनुसन्धान के लिए वैज्ञानिकों पर जो अत्याचार किए गए उन्हें पढ़ कर कलेजा मुंह को आता है।

देवी हियोफिया रेखागणित का प्रचार और आविष्कार करती थी। पर रेखागणित की बाईबल में कहीं भी चर्चा नहीं है। अतः बाईबल विरोधी इस कार्य को रोकने के लिए पादरी सिरिल की आज्ञानुसार उस देवी को नंगा किया और जान से मार दिया।

बाईबल में अमरीका का नाम तक नहीं आता अतः पुर्तगाल के बादशाह ने अमेरिका की खोज के लिए कोलम्बस को मांगने पर भी आर्थिक सहायता नहीं दी। बाईबल में लिखा है कि भूमि स्थिर है तथा सूर्य घूमता है। इसके विपरीत विज्ञान ने सिद्ध कर दिया है कि भूमि घूम रही है। इस सत्य का प्रकाश करने के कारण गैलिलियो आदि को कौन सा कष्ट नहीं दिया गया? बेचारे ब्रूनो को तो जान की बाजी लगानी पड़ी।

इसी-तरह कुरान में लिखा है कि "अल्लाह वह है जिसने खड़ा किया आसमान को बिना खम्बे के, देखते हो तुम उसको फिर ठहरा ऊपर अर्श के आज्ञा बर्तने वाला किया सूरज और चाँद को।' और वही है जिसने बिछाया पृथ्वी को। उतारा आसमान से पानी, बस बहे नाले साथ अन्दाज अपने के।"

मं०३.सि०१३.सू०१३.आ० १,३,१७,२६

परन्तु वेद में बुद्धि और सृष्टि नियमों के प्रतिकूल एक भी बात नहीं है। आदि सृष्टि में वेद ने यह घोषणा कर दी थी कि भूमि सूर्य के चारों ओर घूमती है। यजुर्वेद (३.६) में कहा है –

अयं गौः पृश्निरक्रमीद सदन्मातरं पुरः । पितरं च प्रयन्तस्व ।।

ऋषि दयानन्द ने वेद का यही प्रमाण देते हुए सत्यार्थप्रकाश के अष्टम् समुल्लास में लिखा है –"यह भूगोल जल सहित सूर्य के चारों ओर घूमता जाता है, इसलिए भूमि घूमा करती है।" ऋषि दयानन्द ने इस मन्त्र में 'गौ' का अर्थ 'भूमि' निरुक्त और निघण्टु के आधार पर किया है।

गौरिति पृथिव्या नामधेयम् यददूरं गता भवति । यच्चास्याँ भूतानि गच्छन्ति ।

निरुक्त

गौरिति पृथिवी नामसु पठितम्। निघण्टु

आचार्य द्विजेन्द्रनाथ संस्कृत साहित्य विमर्श में इस मन्त्र का अर्थ इस प्रकार करते हैं–"(पृश्निः) प्राणियों के प्राणों की पौषिका (गौ) पृथ्वी (असदत्) निरन्तर (मातरं) निज मान दण्ड भूत स्व अक्ष पर घूमती है और (पितरं) सारे जगत के रक्षक रूप सूर्य के (पुर) के सामने द्युलोक में भ्रमण करती है।" इस प्रकार आचार्य जी इस मन्त्र द्वारा पृथ्वी की दोनों गतियों, दैनिक तथा वार्षिक, का निर्देश करते हैं। इस सत्य का प्रतिपादन वेद के और भी कई मन्त्रों में किया गया है।

वर्षेण भूमिः पृथिवी वृताऽवृता । अथर्व॰ १२.१.५२

अर्थात् "वर्ष भर में भूमिं अपना चक्कर पूरा करती है"। अतः ब्राउन ने ठीक ही लिखा है कि "यह पूर्णतया वैज्ञानिक धर्म है जहाँ धर्म और विज्ञान हाथ में हाथ मिला कर चलते हैं। यहाँ धार्मिक सिद्धान्त विज्ञान तथा दर्शन पर आधारित हैं ।"[११]

४. ईश्वरीय ज्ञान ईश्वर के स्वभाव और गुणों के अनुकूल होना चाहिए। देव दयानन्द सत्यार्थप्रकाश के सप्तम् समुल्लास में लिखते हैं – " जैसा ईश्वर पवित्र, सर्वविद्यावित्, शुद्ध गुण और कर्म स्वभाव, न्यायकारी, दयालु आदि गुण वाला है, वैसे जिस पुस्तक में ईश्वर के गुण, कर्म तथा स्वभाव के अनुकूल कथन हो, वह ईश्वरकृत; अन्य नहीं ।"

५. धर्मवीर पण्डित लेखराम 'कुलियात आर्यमुसाफिर' में लिखते हैं – "वह इल्हाम (ईश्वरीय ज्ञान) ऐसी जबान में हो जो सब जबानों से मुम्ताज हो क्योंकि परमात्मा अपने गुणों को इन्सानों से मुम्ताज है।" भाषाशास्त्री यह स्वीकार करते हैं कि संस्कृत को छोड़ कर शेष भाषाएँ अपूर्ण हैं। उनकी लिपियाँ अवैज्ञानिक हैं। इन भाषाओं में लिखा कुछ और जाता है और पढ़ते कुछ और हैं। केवल संस्कृत भाषा ही पूर्ण और वैज्ञानिक है। बोप महोदय का कथन है–"संस्कृत ग्रीक और लैटिन भाषा से अधिक पूर्ण है। एक समय संस्कृत सारे विश्व में बोली जाती थी।"[१२] वास्तविकता यह है कि संस्कृत से ही सारी भाषाएँ उत्पन्न हुई हैं। अमरीकन विद्वान बिल डयूरान्ट ने लिखा है–"भारत वर्ष हमारी जाति की माता और संस्कृत सभी यूरोपियन भाषाओं की जननी है।"[१३]

अतः वेद की भाषा ही सर्वोत्तम और पूर्ण है।

६. वेद स्वयं भी ईश्वरीय ज्ञान होने की घोषणा करता है–

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतऋचः सामानि जज्ञिरे।

छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत।। यजु॰ ३१.७

"उस सर्व पूज्य सर्वोपास्य, पूर्ण ब्रह्म परमेश्वर से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद उत्पन्न हुए हैं।"

देवस्य श्लोकं सवितुर्मनामहे ऋ॰७.८२.१०

"सृष्टि के रचनेहारे परमेश्वर की वेदवाणी को आदर से हम मनन करें।"

वेद शब्द 'विद्' धातु से बना है अतः वेद का अर्थ 'ज्ञान' है। पर बाईबल का धातु अर्थ 'पुस्तकों का संग्रह' है। कुरान तो स्वयं घोषणा करता है–

आरम्भ साथ नाम अल्लाह के क्षमा करने वाला दयालु · मं.१.सि॰ १.सू॰ १

इसकी समीक्षा करते हुए ऋषि दयानन्द लिखते हैं–"मुसलमान लोग ऐसा कहते हैं कि वह कुरान खुदा का कहा है परन्तु इस वचन से विदित होता है कि इस का बनाने वाला कोई दूसरा है क्योंकि जो परमेश्वर का बनाया होता तो "आरम्भ साथ नाम अल्लाह के" ऐसा न कहता किन्तु 'आरम्भ वास्ते उपदेश मनुष्यों के' ऐसा कहता।"

वेद की प्रामाणिकता सभी प्रमुख आचार्यों ने स्वीकार की है। महर्षि कणाद वेद को स्वतः प्रमाण मानते हैं–

तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम्। वै॰ १.१.३

महर्षि कपिल ने सांख्यदर्शन (५.५१) में विधान किया है–

निजशक्त्यभिव्यक्तेः स्वतः प्रामाण्यम्।

अर्थात् परमेश्वर की अपनी शक्ति से उत्पन्न होने के कारण वेद स्वतः प्रमाण है। नीत्से ने मनुस्मृति की बहुत प्रशंसा की है।[१४] मनुस्मृति ने भी वेद की प्रामाणिकता स्वीकार की है। मनुस्मृति में घोषणा की गई है –

नास्तिको वेद निन्दकः। 'वेद निन्दक नास्तिक है।'

वेदोऽखिलो धर्ममूलम् । 'वेद समस्त धर्म का मूल है।'

श्रुति स्मृति विरोधे तु श्रुतिरेव गरीयसी।

" यदि वेद तथा स्मृति में विरोध हो तो वेद ही श्रेष्ठ है।"

अत्रि स्मृति के अनुसार वेद से बढ़ कर कोई शास्त्र नहीं है–

नास्ति वेदात्परं शास्त्रम् ।

शतपथ ब्राह्मण (१४.५.४.१०) में महर्षि याज्ञवल्क्य अपनी पण्डिता पत्नी मैत्रेयी को कहते हैं –

एवं वा अरेऽस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः ।

"हे मैत्रेयी ! उस महान् परमेश्वर से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद श्वास–प्रश्वास की भाँति अनायास निःश्वासित हुए।"

गुरु ग्रंथ साहिब में वेद की महिमा गाई गइ है–

ओंकार वेद निरमए ।

चार दीवे चहु हथ दीए, एका एकी बारी–बसन्त हिंडोल, महला १, शब्द १

असंख्य ग्रन्थ मुखि वेद पाठ । जपुजी

वेद वखिआन करत साधूजन, भागहीन समझत नहीं खलु।

–टोडी महला ५, शब्द २६

वेद कतेब कहहु मत झूठे, झूठा जो न विचारे।

–राग प्रभाती कबीरजी शब्द ३

आचार्य दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश (तृतीय समुल्लास) में यहाँ तक लिखा है–"इन (अन्य ग्रंथों) में भी जो–जो वेद विरुद्ध प्रतीत हो, उस–उस को छोड़ देना क्योंकि वेद ईश्वरकृत होने से निर्भ्रान्त, स्वतः प्रमाण अर्थात् वेद का प्रमाण वेद ही होता है।"

अतः इन सभी तर्कों एवं प्रमाणों द्वारा यह स्पष्ट है कि वेद ही ईश्वरीय ज्ञान है।

ज्ञान का प्रकाश

वेद ईश्वरं की नित्य विद्या है। उसकी उत्पत्ति अथवा अनुत्पत्ति नहीं हो सकती। हाँ, सृष्टि के आदि में परमात्मा ने अग्नि, वायु, आदित्य तथा अङि्.गरा ऋषियों पर ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद का प्रकाश किया।" परमेश्वर के सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापक होने से जीवों को अपनी व्याप्ति से वेद विद्या के उपदेश करने में कुछ भी मुखादि की अपेक्षा नहीं है क्योंकि मुख जिह्वा से वर्णोच्चारण अपने से भिन्न के बोध होने के लिए किया जाता है। कुछ अपने लिए नहीं। क्योंकि मुख जिह्वा के व्यवहार करे बिना ही मन मन में अनेक व्यवहारों का विचार और शब्दोच्चारण होता रहता है।"[१५]

वेद में अवयव रूप विषय तो अनेक हैं पर विज्ञान, कर्म, उपासना तथा ज्ञान चार मुख्य हैं। प्रायः ऋग्, यजु, साम, अथर्व वेद इसी क्रम से गिने

जाते हैं। इस विषय में महर्षि दयानन्द लिखते हैं– "जैसे इस गुणज्ञान विद्या को जानने से पहले ऋग्वेद की गणना योग्य है, वैसे ही पदार्थों के गुणज्ञान के अनन्तर क्रिया रूप उपकार कर के सब जगत् का अच्छी प्रकार से हित भी सिद्ध हो सके, इस विद्या के जानने के लिए यजुर्वेद की गिनती दूसरी बार की है। ऐसे ही ज्ञान, कर्म और उपासना काण्ड की वृद्धि व फल कितना और कहाँ तक होना चाहिये, इसका विधान सामवेद में लिखा है, इसलिए उसको तीसरा गिना है। ऐसे ही तीन वेदों में जो जो विद्या है, उन सबके शेष भाग की पूर्ति विधान सब विद्याओं की रक्षा और संशय निवृति के लिए अथर्ववेद को चौथा गिना है।"[१६]

क्या वेद मन्त्र ऋषियों ने नहीं बनाए ?

कुछ लोग ऋषियों को ही वेद मन्त्रों के बनाने वाले समझते हैं। यह उनकी भारी भूल है। ऋषि मन्त्रों के रचयिता नहीं थे। वे तो उनके अर्थों पर विचार करने वाले थे। यास्काचार्य ने निरूक्त में 'ऋषि' का अर्थ करते हुए लिखा है– **ऋषयो मन्त्र द्रष्टारः**

अर्थात ऋषि "मन्त्र के अर्थ जानने वाला होता है।"

परन्तु किसी भी वैदिक शब्दकोष के आधार पर ऋषि का अर्थ 'मन्त्र बनाने वाला' नहीं किया जा सकता। यह परम्परा रही है कि जिस ऋषि ने जिस मन्त्र के अर्थों पर विचार किया, उस मन्त्र के साथ उस ऋषि का नाम स्मरणार्थ लिखा जाता है। पर नाम लिखा होने मात्र से ऋषि मन्त्र रचयिता नहीं बन जाते।

अनेक मन्त्रों के एक से अधिक ऋषि हैं । ऋग्वेद (१.६.६६) वाले केवल एक ही सूक्त के एक सौ ऋषि बताए गए हैं। तो क्या इस अकेले सूक्त को सौ ऋषियों ने एक ही समय में एक ही स्थान पर बैठ कर बनाया ? वैसे भी एक ही मन्त्र के कुछ ऋषि तो भिन्न–भिन्न समय में हुए हैं। अतः वे सभी एक साथ बैठ कर किसी मन्त्र की रचना कैसे कर सकते है? क्योंकिं ऋषि मन्त्रों पर प्रकाश डालने वाले थे अतः भिन्न–भिन्न समय में एक ही मन्त्र के कई ऋषि होना संम्भव एवं बुद्धिसंगत है।

ईश्वरीय ज्ञान का समय-समय पर प्रकाश असम्भव

एक विचार यह भी है कि यद्यपि परमात्मा ने सृष्टि के आरम्भ में अपना ज्ञान प्रदान किया पर बाद में भी समय-समय पर आवश्यकतानुसार

ज्ञान का प्रकाश भिन्न-भिन्न मनुष्यों पर बाईबल, कुरान आदि के रूप में

होता रहा है। इस भ्रम ने विश्व का बहुत अहित किया है। इस विचार में निम्नलिखित दोष हैं–

१. पूर्ण प्रभु का ज्ञान भी पूर्ण होना चाहिए। समय–समय पर ईश्वरीय ज्ञान प्रकट होते रहने का अर्थ है कि आदि सृष्टि में दिए गए ज्ञान में कुछ कमी रह गई थी जिसे बाद में पूरा करना पड़ा । ऐसा मानने से परमात्मा की सर्वज्ञता में दोष आता है। अपने कार्य में सुधार की आवश्यकता तो अल्पज्ञ जीव को हुआ करती है, न कि सर्वज्ञ भगवान् को। दीपक का उदाहरण लीजिए। जब मानव ने आरम्भ में मिट्टी का छोटा-सा दीपक बनाया था, उस समय उसे न तो भविष्य के लोगों की आवश्यकताओं का ज्ञान था और न ही उसमें इतनी बुद्धि थी कि एक दोषरहित दीपक बना पाता। पर धीरे–धीरे मनुष्य का अनुभव बढ़ता गया और वह आवश्यकतानुसार दीपक में सुधार करता गया। सम्भव है कि बिजली के लैम्प में भी भविष्य में सुधार करना पड़े । परन्तु सर्वज्ञ प्रभु ने आदि सृष्टि में ही जो सूर्य बनाया था, वह आज तक सभी प्रकार की मानवीय आवश्यकताओं को पूरा करता हुआ ठीक कार्य कर रहा है। उसमें किसी सुधार की आवश्यकता नहीं पड़ी। इसी प्रकार प्रभु को अपने ज्ञान में परिवर्तन करने की आवश्यकता भी नहीं हुआ करती क्योंकि वह आदि सृष्टि में ही सभी समय के सभी मनुष्यों की आवश्यकतानुसार ज्ञान दे दिया करता है। सुधार तो अल्पज्ञ मनुष्य ही अपनी पुस्तकों में किया करता है। वस्तुतः ईश्वरीय ज्ञान अपरिवर्तनशील होता है। अथर्ववेद, (१०.८.३२) में भी कहा है–

पश्य देवस्य काव्यं न ममार न जीर्यति

"परमदेव परमात्मा के काव्य (वेद रूपी ज्ञान) का दर्शन (स्वाध्याय) करो क्योंकि यह ज्ञान कभी नष्ट नहीं होता, न ही जीर्ण होता है ।"

२. यदि यह मान लिया जाए कि आदि सृष्टि में दिया ईश्वरीय ज्ञान अधूरा था और परमात्मा समय–समय पर मनुष्यों पर अपना ज्ञान उतारता रहता है तो चालाक लोग ईश्वर के नाम पर भोली–भाली जनता को धोखा देकर सबके सामने हर प्रकार की बुराई करते रहेंगे। इससे व्यभिचार फैलता है ।

यहाँ एक प्रश्न स्वाभाविक है कि क्या दूसरे ग्रन्थों में कोई भी सच्चाई नहीं है ? और यदि उन में लेशमात्र भी सच्चाई है तो उस सत्य को उन

पुस्तकों के द्वारा ग्रहण करने में क्या हानि ? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए सत्यार्थप्रकाश (तृतीय समुल्लास) में ऋषिवर दयानन्द लिखते हैं– "जो–जो उन में सत्य है सो–सो वेदादि सत्य शास्त्रों का है और मिथ्या उन के घर का है। जो कोई इन मिथ्या ग्रन्थों से सत्य का ग्रहण करना चाहे तो मिथ्या भी उसके गले लिपट जावें इसलिए असत्यमिश्रं सत्यं दूरतस्त्याज्यमिति असत्य से युक्त ग्रन्थस्थ सत्य को भी वैसे छोड़ देना चाहिये जैसे विषयुक्त अन्न को।" देव दयानन्द का उत्तर इतना तर्कपूर्ण और स्पष्ट है कि इस प्रसंग में अधिक लिखना व्यर्थ होगा।

पवित्र वेद ज्ञान के बारे में कुछ भ्रान्त विचार

तर्क और प्रमाणों के आधार पर यह स्पष्ट है कि वेद ईश्वरीयज्ञान है। वर्तमान युग के भी बड़े–बड़े विद्वानों ने वेद के समक्ष श्रद्धा से सिर झुकाया है। फ्रांस के महान् दार्शनिक वोल्टेयर को जब यजुर्वेद की प्रति भेंट की गई तो उसने कहा था–"इस सर्वाधिक मूल्यवान भेंट के लिए पश्चिम सदा के लिए पूर्व का ऋणी है।" मोन्ज लियोन डेल्बॉस के विचारानुसार "यूनान अथवा रोम का कोई भी स्मारक ऋग्वेद से अधिक मूल्यवान नहीं है।"[१७] थ्यूरो ने तो यहाँ तक कहा है–"मैंने वेदों के जो उद्धरण पढ़े हैं वे मुझ पर एक उच्च और पवित्र ज्योतिपुंज के प्रकाश की तरह पड़ते हैं जो एक उत्कृष्ट मार्ग का वर्णन करता है। वेदों के उपदेश सरल, देश और जाति विशेष के इतिहास से रहित तथा सार्वभौमिक हैं।"[१८]

परन्तु इतने पवित्र एवं मानव कल्याण के विचारों से पूर्ण वेदों के विषय में कुछ लेखकों के भ्रान्तिपूर्ण विचार पढ़िए –

"ऋग्वेद की ऋचाएं अबोध शिशुओं की अनगढ़ प्रार्थनाएँ हैं।" –फलीडर

"मैं आपको फिर याद दिला दूँ कि वेद में पर्याप्त मात्रा में बालपन और मूर्खतापूर्ण भाव हैं, यद्यपि उसमें ऐसे तत्व बहुत कम हैं जो बुरे और आपत्तिजनक हों......कई मन्त्र सर्वथा अर्थरहित और निःसार हैं।"[१९] –मैक्समूलर

"वेद मनुष्यों की कल्पना, मनुष्यों की सृष्टि हैं, इतिहासप्रेमियों तथा आदिम मानव सभ्यता के जिज्ञासुओं के लिए वह उपयोगी सामग्री प्रदान करते हैं।"[२०] –राहुल सांकृत्यायन

सारांश यह कि ऋषि दयानन्द से पूर्व वेद को बच्चों की बिलबिलाहट और गडरियों के गीत कहा जाता था। आखिर ऐसा क्यों ? कारण के बिना तो कार्य होता नहीं। अतः इसका भी कारण तो होगा ही। भ्रान्ति का मूल

जानना आवश्यक है क्योंकि रोग का निदान बिना कारण जाने नहीं हो सकता। इस मिथ्या विचार की तह में निम्नलिखित कारण दीख पड़ते हैं—

१. भारतीयों की अरुचि

पिछला कुछ समय विश्व गुरु भारत के पतन का काल रहा है। पराधीन जातियों का निज देश, भाषा, धर्म एव सभ्यता का प्रेम प्रायः समाप्त हो जाया करता है। अतः हमारी भी अपने धर्म और सभ्यता के स्रोत वेद के प्रति अरुचि का होना स्वाभाविक था। वेद केवल पूजा के लिए रह गए थे। उनका पढ़ना बिल्कुल समाप्त हो गया था। ऐसे समय में दूसरों को वेद की ओर प्रेरित करने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। कहते हैं– "राजा राममोहनराय लन्दन में थे। उन्हौंने फ्रेडरिक रोजन को ब्रिटेन के संग्रहालय में ऋग्वेद की हस्तलिपि की नकल करने में खूब व्यस्त देखा। राजा हैरान हो गया। उसने रोजन को बताया कि उसे वेद मन्त्रों पर अपना समय बिल्कुल नष्ट नहीं करना चाहिए अपितु उपनिषदों का अध्ययन करना चाहिए।"[२१] एक ओर तो महात्मा मनु कहते हैं–

योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः ।।

"जो वेद को न पढ़ कर अन्यत्र श्रम किया करता है वह अपने पुत्र–पौत्र सहित शूद्र भाव को शीघ्र ही प्राप्त हो जाता है।" पर दूसरी ओर राजा राममोहनराय वेद के अध्ययन को 'समय नष्ट करना' कहते हैं। हाय रे पतन ! तेरी भी कोई सीमा नहीं।

२. वेद के पाश्चात्य भाष्यकारों में फ्रैडरिक मैक्समूलर, मोनियर विलयम्स, आर. ग्रिफिथ, होरेस हेनरी विल्सन, विन्टरनिट्ज, मैक्डानल तथा वेबर आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। ये सभी सज्जन ईसाई मत के प्रति अत्यधिक आस्थावान होने के कारण वेदों का निष्पक्ष मूल्यांकन करने में असमर्थ रहे। इनका मुख्य उद्देश्य वेद–भाष्य करना नहीं अपितु ईसाई मत का प्रचार करना था। इस लक्ष्य की सिद्धि के लिए उन्होंने सुनियोजित ढंग से अपनी पूर्व मान्यताओं की पुष्टि के लिए वेद मन्त्रों के अर्थ को बदला। यह सारा कार्य सोची समझी योजना के अनुसार किया गया।

इस षड्यन्त्र के पीछे जिन लोगों का हाथ था उसमें बैबिंगटन मैकाले भी एक था। वह कट्टरपंथी ईसांई था। चर्च एवं ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति उसकी सेवाओं के लिए उसे लार्ड की उपाधि से विभूषित किया गया था।

उसने भारत में शिक्षा का माध्यम इसलिए इंग्लिश बनवाया कि प्रतिष्ठित जातियों में कोई भी व्यक्ति हिन्दुत्व के प्रति आस्थावान न रह पाए। मैकाले अपनी योजना की सफलता के लिए वैदिक धर्म पर प्रत्येक दिशा से आक्रमण करना चाहता था । इसलिए उसे एक ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता थी जो उसकी मान्यताओं के अनुसार वेद का अनुवाद कर सके। खोजते–खोजते उसकी दृष्टि फ्रेडरिक मैक्समूलर पर पड़ी । दोनों के मध्य २४ दिसम्बर १८५५ को एक भेंट हुई। वैदिक धर्म के लिए यह एक दुर्भाग्यपूर्ण दिन था। इस अकेली भेंट ने वेद का जितना अहित किया उतना अनेक व्यक्तियों के सांझे प्रयत्न भी नहीं कर पाये। मैक्समूलर धन के बदले लेखनी बेचने को उद्यत नहीं था पर ५५ वर्षीय अनुभवी कुटिल राजनीतिज्ञ मैकाले के समक्ष ३२ वर्षीय अनुभवहीन युवक की एक न चली। मैकाले ने उसे यश एवं धन का लोभ भी दिया तथा भय भी दिखाए। साधन विहीन मैक्समूलर अप्रसिद्धि की अवस्था में यत्र तत्र घूम रहा था। सम्भव है कि वह धन का लोभी न हो परन्तु उसे साधनों की आवश्यकता तो थी ही। फिर यश तो युवावस्था की कमजोरी है। मैक्समूलर एक सामान्य व्यक्ति ही तो था। बेचारा यश के लोभ का संवरण न कर सका और उसने मैकाले के पास अपनी बुद्धि, विद्या एवं लेखनी को गिरवी रखना स्वीकार कर लिया। इस कार्य के लिए धन मिला ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी से। यह चक्र भारत मैत्री की आड़ में चलाया गया।[२२]

एक अन्य सज्जन कर्नल बोडन ने अपने धन से ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में बोडन पीठ की स्थापना की। उसने अपनी वसीयत में १५ अगस्त १८११ को स्पष्ट लिखा –"मेरे इस उदारतापूर्ण उत्तरदान का विशेष उद्देश्य है कि संस्कृत में लिखित धर्मशास्त्रों के अनुवाद–कार्य को इस रूप में बढ़ाया जाए कि मेरे देशवासी भारत के आदिवासियों को ईसाई मत में दीक्षित करने के कार्य में अग्रसर हो सकें ।"[२३]

पाश्चात्य लेखकों का वास्तविक उद्देश्य अपने मत का प्रचार करना था अतः उनके द्वारा वेद की निन्दा किया जाना स्वाभाविक है। उन्होंने वेद का अनुवाद वेद को निकृष्ट तथा बाईबल को सर्वोत्तम पुस्तक सिद्ध करने के लिए किया है। मैक्समूलर ने सन् १८६८ में अपनी पत्नी के नाम एक पत्र में लिखा था –"मेरा यह संस्करण तथा वेद का अनुवाद आने वाले समय में भारत के भाग्य तथा उस देश के लाखों व्यक्तियों पर प्रभाव

डालेगा। यह उनके धर्म का मूल है और मैं विश्वासपूर्वक अनुभव करता हूँ कि उन्हें यह दिखाना की यह मूल कैसा है, गत तीन सहस्र वर्ष में इससे उत्पन्न होने वाली बातों को जड़ से उखाड़ने का एक मात्र ढंग है।"[२४]

इसी आशय के एक पत्र में मैक्समूलर १६ दिसम्बर १८६८ को भारत मन्त्री ड्यूक ऑफ आर्गायल को लिखता है–"भारत का प्राचीन धर्म लगभग नष्ट है और यदि ईसाईयत उसका स्थान नहीं लेती, तो यह किसका दोष होगा ?"[२५]

यह है वह विचारधारा जिसके प्रभाव में वेदों का अनुवाद किया गया। फिर वेद के साथ न्याय की आशा कहाँ ? अतः श्री अरविन्दु ने वेद रहस्य (प्रथम खण्ड) में ठीक लिखा है–"(पाश्चात्य विद्वानों द्वारा) नई व्याख्याएं इस प्रबल लिप्सा को लेकर विकसित की गई थीं कि वेद मन्त्र उन बर्बर जातियों के प्रारम्भिक इतिहास, रीति–रिवाजों तथा उन संस्थाओं का पता देने वाले सिद्ध हो सकें।"[२६] इसलिए पाश्चात्य लेखकों के विचार संकीर्ण और पक्षपातपूर्ण होने के कारण मान्य नहीं हैं ।

३. रस्किन का विचार है कि जैसे स्वर्ण को प्राप्त करने के लिए चट्टानों को तोड़ा जाता है उसी प्रकार ग्रन्थ के भाव को समझने के लिए शब्दों रूपी पत्थरों को तोड़ना पड़ता है। अतः सही शब्दार्थ करने के लिए उस भाषा का पूर्ण ज्ञान होना आवश्यक है। भाषा पर अधिकार प्राप्त किए बिना पुस्तक के भाव को नहीं समझा जा सकता। प्रसिद्ध वैज्ञानिक हक्सले ने ठीक ही लिखा है–"जिसे ग्रीक या लेटिन की ए.बी.सी. नहीं आती वह उस भाषा में लिखे नाटक पर क्या टिप्पणी करेगा ?" इसी कारण पाश्चात्य विद्वानों का वेद भाष्य प्रामाणिक नहीं कहा जा सकता क्योंकि उनका संस्कृत का ज्ञान शून्य समान है। इस प्रसंग में एक दो घटनाओं का उल्लेख करना ठीक रहेगा –

पण्डित धर्मदेव ने एक बार प्राच्यविद्या सम्मेलन के अध्यक्ष प्रो॰ थोमस से पूछा–"क्या आपको संस्कृत बोलने का अभ्यास है ?" अंग्रेजी में उत्तर मिला–"मेरी प्रबल इच्छा है कि आपकी तरह धारा प्रवाह संस्कृत बोल सकता, पर दुर्भाग्य से मुझे अभ्यास नहीं है ।"[२६]

महात्मा नारायण स्वामी लिखते हैं कि एक भारतीय विद्वान् इंग्लैड गया। वह वहाँ प्रो॰ मैकडोनल से मिला। पर प्रो॰ मैकडोनल उनके साथ संस्कृत में बात न कर सके ।

तो क्या संस्कृत का इतना कम ज्ञान रखने वाले लोग वेद का सही अनुवाद कर सकते हैं ? कदापि नहीं। मैक्समूलर ने स्वयं लिखा है–"हम तो वैदिक साहित्य की सामुद्रिक सतह पर ही फिरते हैं। अभी हमने उस समुद्र में गोता लगा कर रत्न नहीं निकाला। हमने तीस वर्ष के परिश्रम के पश्चात् वेद का जो अनुवाद किया–वह अजमायश है–प्रमाणित नहीं है। शुद्ध और सम्पूर्ण अनुवाद के लिए एक शताब्दी और चाहिए। इस पर मुझे यह शंका है कि हम वेद का सत्य अनुवाद कर भी सकेंगे ?"

अतः पश्चिमी विद्वान् तो स्वयं स्वीकार करते हैं कि वेद का सही अनुवाद करना उनके बस का कार्य नहीं है। यहाँ हम इस बात की पुष्टि के लिए निम्न मन्त्र की व्याख्या करेंगे –

वायवायाहि दर्शतेमे सोमा अरंकृताः ।
तेषां पाहि श्रुधी हवम् ।। ऋ॰ १.२.१

इस मन्त्र का अर्थ म्यूर ने इस प्रकार किया है –

"हे वायु ! आओ। ये सोम तैयार है। इन्हें पियों। हमारी प्रार्थनाओं को सुनो।"[२७] इस मन्त्र का ऐसा ही अर्थ विलसन ने किया है।[२८] पर इस का शुद्ध अर्थ यह है–स्पर्शादि गुणों से देखने योग्य वायु गतिमान और सुगन्धि को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने वाली है। यह सब जगत को जीवों और वृक्षों को जल और प्राण आदि से सुशोभित करके रक्षा करती है। इसके द्वारा ही कहने और सुनने का व्यवहार होता है।[२९]
अतः पाश्चात्य लेखक मन्त्रों का सही अर्थ करने की योग्यता नहीं रखते ।

४. पाश्चात्य विद्वानों ने सायण के भाष्य के आधार पर वेद का अनुवाद किया है। वेदार्थ विषय में भ्रान्ति उत्पन्न करने में सायण का भाष्य मुख्य कहा जा सकता है क्योंकि सायण और महीधर आदि वेद का सही अनुवाद करने में असमर्थ रहे हैं। अतः ऋषि दयानन्द ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में ठीक ही लिखा है कि "जब इन्ही लोगों (महीधर, सायण आदि) के व्याख्यान अशुद्ध हैं, तब यूरोप खण्ड वासी लोगों ने जो उन्हीं की सहायता लेकर अपनी देश भाषा में वेदों के व्साख्यान किए हैं, इनके अनर्थ का तो क्या ही कहना है।" इसलिये बुराई की जड़ सायण का यह अशुद्ध, अवैज्ञानिक, एकांगी और संकुचित अनुवाद हैं क्योंकि "सायण के भाष्य ने पुरानी मिथ्या धारणाओं पर प्रामाणिकता की मुहर लगा दी और उनके निर्देश, उस समय जब कि एक दूसरी सभ्यता ने वेद को ढूंढ कर निकाला

और उसका अध्ययन आरम्भ किया, यूरोपियन विद्वानों के मन में नई गलतियों के कारण बने।"[३०] सब मन्त्रों को केवल यज्ञपरक अर्थ में घसीटना सायण भाष्य की दुर्भाग्यपूर्ण देन है। इसीलिए ब्लूमफील्ड कह उठा था–"वेद एक आदम जाति के यज्ञ सम्बन्धी मन्त्र हैं।" वस्तुतः सायण का भाष्य इतना निकम्मा है कि वेद के प्रसिद्ध पण्डित ब्रह्मदत्त जिज्ञासु लिखते हैं–"यदि सायण भाष्य का ही हिन्दी, अंग्रेजी, उर्दू व अन्य जिस किसी भाषा में अनुवाद करके किन्हीं शिक्षणालयों में रख दिया जाए तो निश्चय ही समझना चाहिए कि कुछ श्रद्धालुओं को छोड़ कर सबकी एक ही ध्वनि उठेगी कि ये वेद जंगलियों की बड़बड़ाहट या अण्ट सण्ट कृतियां हैं।" अतः सायण भाष्य ने पाश्चात्य लेखकों की आखों पर पट्टी बांध दी।

दयानन्द और वेद

सदियों से अलमारी में कैद वेद को मानव मात्र तक पहुचानें का श्रेय देव दयानन्द को है। भारत के इस सन्त का जीवन वेद के लिए था। ऋषि दयानन्द ने समाधि लगा कर वेद के गहन रहस्यों को समझा था। ऋषि की सूझ निराली थी। संस्कृत भाषा पर उनका पूर्ण अधिकार था। बहुधा भाष्यकारों ने वैदिक शब्दों के प्रचलित अर्थ लेने की गलती की थी। पर ऋषिवर ने इन शब्दों के यौगिक अर्थ किए। इस क्षेत्र में ऋषि की यह एक महान देन है। लगभग सभी निष्पक्ष विद्वान दयानन्द की सूझ, तर्क, वेद सम्बन्धी ज्ञान तथा पाण्डित्य को स्वीकार करते हैं । फिट्ज ने लिखा है–"पाश्चात्य विद्वानों का संस्कृत और वेदों का ज्ञान शून्य समान है । हमें उनके कथन पर बिल्कुल विश्वास नहीं । हम केवल दयानन्द भाष्य को प्रामाणिक समझते हैं।" महात्मा टी॰एल॰ वासवानी के विचारानुसार "स्वामी दयानन्द वेदों के ज्ञान के प्रति भारतीयों के ज्ञान चक्षु खोलने वाले पहले व्यक्ति थे । मुझे आधुनिक भारत में स्वामी के समान कोई भी विद्वान् ज्ञात नहीं।"[३१]

महात्मा वासवानी का विचार अक्षरशः सत्य है। वेदभाष्य की ऋषि दयानन्द की शैली ही सर्वोत्तम और पूर्ण है। इस विषय में श्रीयुत अरविन्दु भी स्वीकार करतें हैं–"वैदिक व्याख्या के बारे में मेरा यह विश्वास हो चुका है कि वेदों की अंतिम पूर्ण व्याख्या कुछ भी हो, दयानन्द प्रथम सत्य मार्ग दर्शक के रूप में सम्मानित किए जाएगें। समय ने जिन द्वारों को बन्द कर रखा था उसने उनकी चाबियों को पा लिया और बन्द पड़े हुए स्रोतों मुहरों

को तोड़ कर फैंक दिया।"[32] अतः ये बात निर्विवाद है कि महर्षि दयानन्द का भाष्य ही प्रामाणिक है।

ऋषि दयानन्द ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में अपने वेद भाष्य के विषय में स्वयं लिखा है–"इस वेदभाष्य में अप्रमाण लेख कुछ भी नहीं किया जाता है, किन्तु जो ब्रह्मा से ले के व्यास पर्यन्त मुनि और ऋषि हुए हैं उनकी जो व्याख्या रीति है उससे युक्त ही यह वेदभाष्य बनाया जाएगा। यह भाष्य ऐसा होगा जिस से वेदार्थ से विरूद्ध अबके बने भाष्य और टीकाओं से वेदों में भ्रम से जो मिथ्या दोषों के आरोप हुए हैं वे सब निवृत्त हो जाएंगे । और इस वेदभाष्य से वेदों का जो सत्य अर्थ है सो संसार में प्रसिद्ध हो, कि वेदों के सनातन अर्थ को सब लोग यथावत् जान लें, इसलिए यह प्रयत्न मैं करता हूं।"

ऋषि दयानन्द का प्रभाव

ऋषि दयानन्द के इस पवित्र कार्य की विश्व पर अमिट छाप पड़ी है। दयानन्द ने पाश्चात्य लेखकों के अग्रगामी मैक्समूलर का भी सिर वेद के आगे झुका दिया। वेदों को केवल 'uncultivated race of mere heathens and savages' के लिए मानने वाले मैक्समूलर ने ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका को पढ़ कर मानों प्रायश्चित करने के लिए 'हम भारत से क्या सीख सकते हैं ?' नामक पुस्तक की रचना की । उसमें मैक्समूलर स्वीकार करता है–'मेरा यह निश्चित मत है कि संसार में मनुष्य मात्र के स्वाध्याय के लिए वेद के अतिरिक्त कोई आवश्यक ग्रन्थ नहीं है।" मैक्समूलर एक और स्थान पर लिखता है–"मेरा यह विचार है कि आत्मज्ञान की प्राप्ति की इच्छा रखने वाले तथा अपने पूर्वजों, इतिहास और मानसिक उन्नति के लिए सचेत प्रत्येक व्यक्ति के लिए वेद का स्वाध्याय नितान्त आवश्यक है ।"[33]

मैक्समूलर ही नहीं अपितु सभी विद्वान् ऋषि के वेद सम्बन्धी विचारों का समर्थन करने पर विवश हो गए हैं। वेद को केवल पूजा की पुस्तक मानने वाले भी आज उसे समस्त ज्ञान का भण्डार मानते हैं । पावगी साहब लिखते हैं–"वेद समस्त ज्ञान का भण्डार हैं।"[34] वह अपने एक और ग्रंथ में यहाँ तक मानते हैं वेदों में बहुत सी ऐसी बातें है जिनका अभी तक किसी को ज्ञान नहीं क्योंकि वे साहित्यिक धन की समाप्त न होने वाली खान हैं जिसका अभी थोड़ा भाग ही खुला है और जो अभी तक अज्ञात ही पड़ा है।"[35]

न केवल भारतीय अपितु पाश्चात्य लोगों पर भी वेद का सिक्का बैठ चुका है। बेल्जियम के नोबल पुरस्कार विजेता मैटरलिंक ने लिखा है–"अतीत के रहस्यों पर डाली हुई अन्तर्दर्शी की एक मात्र दृष्टि ही वेदों में निहित अद्वितीय ज्ञान को प्रगट कर सकती है।"[३६] इसलिए मोरिस फिलिप ने स्वीकार किया है–"हम इस निष्कर्ष पर पहुंचनें में न्यायोचित हैं कि वैदिक आर्यों के उच्चतर और पवित्रतर विचार ईश्वरीय ज्ञान का परिणाम थे।"[३७]

वेद और विज्ञान

ऋषि दयानन्द वेद में विज्ञान भी मानते हैं। मैक्समूलर ने लिखा है–"स्वामी दयानन्द के लिए वेद में लिखी प्रत्येक बात न केवल पूर्णतया सत्य है अपितु वह इससे भी एक पग आगे गए तथा वह वेद की व्याख्या से दूसरों को यह निश्चय कराने में सफल हुए हैं कि प्रत्येक जानने योग्य बात वेद में पाई जाती है अतः आधुनिक विज्ञान के अविष्कार भी वेद में वर्णित हैं।"[३८] तो क्या ऋषि का यह विचार कि वेद में विज्ञान है, सत्य है? इस प्रश्न का उत्तर हम कुछ विद्वानों के मुखसे दिलाना चाहेंगे। पी.ऐन. गौड़ लिखते हैं–"ऋग्वेद वैज्ञानिक सिद्धान्तों और परीक्षणों का वर्णन करता है जबकि रासायनिक वस्तुओं के तैयार करने की विधि यजुर्वेद में वर्णित है। यजुर्वेद वास्तव में प्रयोगशाला मार्गदर्शक है।"[३९] डाक्टर रेले स्वीकार करते हैं–"हमारा आजकल का नाड़ी सिस्टम की रचना का ज्ञान ऋग्वेद में दिए जगत के शाब्दिक वर्णन से इतनी अच्छी तरह मिलता है कि मन में यह प्रश्न उठने लगता है कि क्या वेद वास्तव में धर्म ग्रन्थ हैं या वे शरीर विज्ञान और नाड़ी सिस्टम की रचना विषयक ग्रन्थ हैं।"[४०] सर विलियम जोन्स के विचारानुसार "शल्य चिकित्सा, औषधि शास्त्र, संगीत विद्या, नृत्य कला, धनुर्विद्या तथा गृह निर्माण विद्या की व्यावहारिक कलाएं जिनमें यान्त्रिक कला की पद्धति भी सम्मिलित है, वेदों से ली गई है।"[४१] जैकोलियट ने लिखा है–"आश्चर्य की बात है ! केवल वेद के ही विचार आधुनिक विज्ञान के साथ पूर्ण रूप से मिलते हैं।"

अतः पूर्व और पश्चिम के विद्वान वेद में विज्ञान मान चुकें हैं। यहाँ हम विद्वानों द्वारा मान्यता प्राप्त उपरोक्त सत्य की पुष्टि कुछ उदाहरणों द्वारा करेंगे।

१. ऋग्वेद (१.५०.६) में एक मन्त्र आया है–

सूरो रथस्य नप्त्यः

यहाँ सूर्य को सबका प्रकाशक होने से 'सूर' कहा गया है। रथ शब्द 'रंह' धातु से बना है। जिसका अर्थ गति करना है। नक्षत्र घूमते रहतें हैं अतः उन्हें रथ की संज्ञा दी गई है। रथ Planet का सही अनुवाद है क्योंकि Planet लैटिन शब्द Planeta से बना है जिसका अर्थ है Wanderer. नप्तः का अर्थ 'नहीं गिरने देना' है। सायण भी मानता है कि 'नप्त्यःन पातयित्र्यः याभिर्युक्ताभि रथो याति न पतति तादृशी।" अर्थात् जो इसे नहीं गिरने देते, उन्हें नप्त्यः कहते हैं। अतः 'सूरो रथस्य नप्त्यः का अर्थ है कि सूर्य इस सौरमण्डल के नक्षत्रों को गिरने नहीं देता।

ऋग्वेद एक और स्थान पर कहता है—**उक्षादाधार पृथिवीमुतद्याम्।** अर्थात् "सूर्य भूमि आदि नक्षत्रों को आकाश में रोके हुए है।" अथर्ववेद ने **सूर्य्येणोत्तभिता द्यौः** कह कर इस सत्य का प्रतिपादन किया है। सूर्य इन नक्षत्रों को किस प्रकार रोके हुए है? इस प्रश्न का उत्तर ऋग्वेद में निम्न लिखित मन्त्र(१.३५.२) द्वारा दिया गया है—

आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च ।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ।।

इस मन्त्र में यह स्पष्ट कह दिया है कि धुरी के चारों ओर घूमने वाला यह सूर्य सौरमंडल के भूमि आदि नक्षत्रों को अपनी आकर्षण शक्ति के द्वारा रोके हुए है।

यजुर्वेद में भी कहा है कि **वृषभो दाधार पृथिवीम्** अर्थात् वृषभ पृथ्वी को धारण करता है। पौराणिकों ने वृषभ का प्रचलित एवं अप्रसांगिक अर्थ बैल करके यह कथा प्रसिद्ध कर दी कि पृथ्वी बैल के सींग पर ठहरी है। महात्मा यास्क ने वृषभ का अर्थ करते हुए लिखा है, **वृषभः कस्मात्—वर्षयिता अपाम्।** जो जल बरसाए वह वृषभ है। सूर्य जल को वाष्प बना उड़ा ले जाता है, फिर यही मेघ बन वर्षा करते हैं। इस प्रकार वृषभ का अर्थ हुआ 'सूर्य'। अतः इस मन्त्र में स्पष्ट कहा गया है कि सूर्य पृथ्वी को धारण किए हुए है।

२. सर्वप्रथम न्यूटन ने यह सिद्ध किया था कि सूर्य का सफेद प्रकाश वास्तव में सात रंगों की किरणों के मेल से बना हैं। परन्तु इस सिद्धान्त का प्रतिपादन परमात्मा ने आदि सृष्टि में ही ऋग्वेद (१.५०.८,६) में कर दिया था। मन्त्र इस प्रकार है—

सप्तत्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य। शोचिष्केशं विचक्षण।।

हे सूर्य देव ! सात प्रकार की किरणें तेरे प्रकाश को नक्षत्रों तक ले जाती हैं।

अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्यः ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः।।

'नक्षत्रों को गिरने से बचाने वाला सूर्य पवित्र करने वाली सात प्रकार की किरणों को जोड़ता है'। आठवें मन्त्र में हरितः शब्द आया है। यह हृ धातु से बना है जिसका अर्थ है–हर लेना, ले जाना। सूर्य की किरणें जल एवं विभिन्न रसों को हरण करती हैं। अतः उन्हें हरितः कहा गया है। निघण्टु के अनुसार हरित इत्यादित्याश्वानां संज्ञा हरित आदित्य स्येति। इस प्रकार निघण्टु में हरितः को आदित्याश्वा अर्थात् सूर्य के घोड़े बताया गया है। अश्वः आंशु' से बना है अतः इस का अर्थ है 'तीव्र गति से ले जाने वाला'। इसलिए घोड़े को भी अश्व कहते हैं। परन्तु वेद में अश्व घोड़े के अतिरिक्त प्रकाश, विद्युत, उष्णता आदि के लिए भी प्रयुक्त हुआ है। घोड़ा बेचारा चलता ही कितनी गति से है ? पर प्रकाश की गति तो १८६००० मील प्रति सैकिण्ड है। अतः निघण्टु ने हरितः को 'सूर्य के प्रकाश को तीव्र गति से ले जाने वाली अथवा किरण' बताया है।

नवें मन्त्र में शुन्ध्युवः शब्द आया है जिसका अर्थ है "पवित्र करने वाली।" इससे प्रगट होता है कि प्राचीन आर्य किरणों कें वायुमण्डल को पवित्र करने के गुण से परिचित थे। आधुनिक विज्ञान ने सिद्ध किया है कि सूर्य की किरणें अपवित्रता का नाश कर वायुमंण्डल को पवित्र करती हैं। वैसे भी हम दिन–रात ऑक्सीजन ले रहें हैं तथा कार्बन डाईऑक्साइड छोड़ रहें हैं। सूर्य के प्रकाश में कार्बन डाईऑक्साइड जल से मिलकर क्लोरोफिल के सहयोग से कार्बोहाईड्रेट बना देती है। इस प्रकार 'प्रकाश संश्लेषण' होता रहता है, पौधों को भोजन मिल जाता है तथा वायु साफ हो जाती है।[४२] यह क्रिया अंधेरे में सम्भव नहीं। यही कारण है कि वायुमण्डल में दिन की अपेक्षा रात्रि को कार्बन डाईऑक्साइड की मात्रा १२ प्रतिशत बढ़ जाती है। भूमि पर पड़ने वाली सूर्य की ऊर्जा का दस सहस्रवां भाग केवल इसी क्रिया में व्यय हो रहा है। इस प्रकार इन दो मन्त्रों में यह बताया गया है कि सूर्य अपनी सात प्रकार की किरणों को जोड़ कर सफेद प्रकाश बनाता है।

ऋग्वेद के एक और मन्त्र में भी यह संकेत मिलता है। मन्त्र इस प्रकार है– अमी ये सप्त रश्मयस्तत्रा मे नाभिरातता (१.१०.६)

"सात प्रकार की किरणें मुझ में इस प्रकार मिलती हैं जैसे नाभि में अरे ।"

अथर्ववेद (१७.१०.१७.१) में कहा है :

अव दिवस्तायन्ति सप्त सूर्यस्य रश्मयः सूर्य की सात किरणें दिन को उत्पन्न करती हैं।
यह तथ्य वैदिक साहित्य में इतना व्यापक है कि 'सप्त रश्मि' सूर्य का विशेषण बन गया है। यास्काचार्य भी मानते हैं के 'सप्त ऋषयः रश्मयः आदित्ये' अर्थात् 'सप्त ऋषय' सूर्य की किरणें हैं।

वैसे सूर्य को सहस्र रश्मि कहते हैं अतः सप्त रश्मय का अभिप्राय सात किरणों वाला नहीं अपितु सात प्रकार की अथवा सात रंगों की किरणों वाला है। इन किरणों के रंगों का वर्णन छान्दोग्योपनिषद् (८.६.१) में किया गया है।

असौ वा आदित्यः पिंगल एष शुक्ल एष नील एष पीत एष लौहितः।

यहाँ सात रगों की चर्चा नहीं है क्योंकि नीला, पीला, और लाल, यही तीन मुख्य रंग हैं। बाकी रंग इन्हीं रंगों के मेल से बन जाते हैं। परन्तु ऋग्वेद के सूर्य सूक्त के ऊपर लिखित इन दो मन्त्रों (१.५०.८,६) का अर्थ न समझ सकने के कारण यह पौराणिक गप्प प्रचलित हो गई कि सूर्य भगवान अपने रथ में बैठे है और उस रथ को सात घोड़े खींच रहे हैं।

३. अब एक उदाहरण रसायन विज्ञान का लीजिए। कैवेंडिश ने सिद्ध किया था कि दो भाग हाईड्रोजन तथा एक भाग आक्सीजन विद्युत के द्वारा परस्पर मिल कर जल बनातें हैं। पण्डित गुरुदत्त विद्यार्थी के अनुसार यही बात ऋग्वेद के मित्रं हुवे पूतदक्षं वरुणं चरिशादसम्। धियं घृताचीं साधन्ता।। मन्त्र (१.२.६) में कही गई है।[४३]

वेदादि शास्त्रों में औषधि विज्ञान का वर्णन भी है।[४४] अनेक रोगों का कारण भिन्न–भिन्न रोग कीट माने गए हैं। अथर्ववेद के प्रथम काण्ड के २८वें सूक्त के पहले मन्त्र में यातूधान, किमीदिन तथा राक्षस नामक रोगकीटों का वर्णन है। रोगकीटों की कुछ अन्य जातियों की चर्चा अथर्ववेद के ३१वें सूक्त के दूसरे मन्त्र में की गई है। इसी सूक्त के चौथे मन्त्र में विषूचिका, दाद, खांज, राज्यक्षमा तथा पीनस आदि रोगों को उत्पन्न करने वाले कीटाणुओं की चर्चा है। पांचवें मन्त्र में बताया गया है कि ये रोग कीट पर्वतों , वनों, औषधियों, पशुओं तथा जलों में रहते हैं और हमारे अन्दर अन्न एवं जल के साथ प्रवेश करते हैं। रोगाणुओं के भोजन तथा पानी के द्वारा शरीर में प्रविष्ट हो जाने की बात यजुर्वेद(१६.६२) में भी कही गई है। अथर्ववेद (२.३२.१) में बताया गया है कि उदय तथा अस्त होने वाले सूर्य की किरणें शरीर में रोग

कीटों का नाश करती हैं। रोग कीट अँधेरे में खूब बढ़ते हैं। वासिलस कोली

लगभग बीस मिनट में टूट कर दो कृमि उत्पन्न कर देता है। इस प्रकार यदि परिस्थिति अनुकूल रहें तो केवल आठ घण्टे में एक करोड़ साठ लाख कृमि उत्पन्न हो जाएँगे तथा चौबिस घण्टें में उत्पन्न होने वाले कृमियों का भार चौदह हजार मन होगा। परन्तु सूर्य की उष्णता आदि प्रतिकूल परिस्थिति के कारण ये रोग कीट इस तेजी से नहीं बढ़ पाते।

५. वैदिक साहित्य में गणित विद्या का भी उल्लेख है। अथर्ववेद के मन्त्र (१३.४.१६–१८) लीजिए :

य एवं देवमेकवृतं । न द्विवतीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते ।
न पंचमो न षष्टः सप्तमो नाप्युच्यते। नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते।

इस मन्त्र में बताया गया है कि परमात्मा एक है। दो, तीन, चार, पाँच, छह, सात, आठ, नौ, दस नहीं हैं। इस प्रकार एक से दस तक गिनती इस मन्त्र में दी गई है। गिनती के अतिरिक्त योग एवं गुणा आदि का विधान भी वेद में है। यजुर्वेद (१७.२) में बताया गया है कि एक को दस से गुंणा करके दस, उसे पुनः दस से गुणा करके सौ, फिर इसी प्रकार हजार, दस हजार, लाख, दस लाख, करोड़, दस करोड़, अरब, दस अरब, खर्ब, दस खर्ब, नील, दस नील, पद्म, दस पद्म, शंख, दस शंख बनते है। इतनी बड़ी संख्या तक गिनती का क्रम बताना बहुत महत्त्व की बात है। क्योंकि प्रायः अन्य भाषाओं में बड़ी संख्याओं को हजार या लाख का कुंछ गुणा बता कर ही कार्य चला लिया जाता है। यजुर्वेद (१८.२६) में किसी संख्या में दो तथा इससे अगले मन्त्र में चार के योग तथा घटाने से बनने वाली संख्याओं की चर्चा है। ऋग्वेद (१०. १३०.३) में वृत्त की परिधि तथा अथर्ववेद (८.६.२) में त्रिभुज का वर्णन है।

आज का भौतिक विज्ञान वेद के इन मन्त्रों के एक–एक शब्द का समर्थन कर रहा है। पर दूसरे मतावलम्बियों के पास एक भी ऐसी पुस्तक नहीं है जो पूर्णतया विज्ञान एवं बुद्धि के अनुकूल हो। अतः सभी मनुष्यों को उचित है कि वेद–मार्ग के पथिक बनें। इसीके द्वारा विश्व में सुख और शान्ति का साम्राज्य स्थापित हो सकता है। यही सकल ज्ञान का भण्डार है। अन्त में हमारी परमदेव परमात्मा से प्रार्थना है कि हे प्रभो ! बल दो, बुद्धि दो ताकि हम आपकी पवित्र वेद वाणी के अनुसार जीवन बना सकें।

संदर्भ एवं टिप्पणियाँ

1. Empricism 2. Sensation 3. Reflection
4. Rationalism itself is not a perfect instrument for the understanding of life.
5. "There is, therefore, no proof of continuously increasing intellecutal power." A.R. Wallace, the Social Environment and Moral Progress.
6. In the Aryan world, Veda is certainly the oldest book.
7. Sex and Sex Workship.
8. "The Vedas are without doubt the oldest works composed in Sanskrit".Heeren, Historical Researches, Vol.II
9. "After the latest researches into the history and chronology of borks of old Testament, we may safely now call the Rigveda as the oldest book, not only of the Aryan humanity, but of the whole world." Rev. Morris Philip, the Teaching of the Vedas, P. 104
10. F.Max Mullar. History of Ancient Sanskrit Literature.
11. "It is thoroughly scientific religion where science and religion meet hand in hand. Here theology is based upon science and philosophy".-W.D. Brown, The Superiority of the Vedic Religion.
12. "Sanskrit is more perfect and copious than Greek and Latin. At one time, Sanskrit was the one language spoken all over the world". Both, Edinberg Review, Vol. 33, p.43,
13. India was the motherland of our race and Sanskrit the mother of Europe's languages. -Vision of India
14. "A work which is spiritual and superior beyond comparison, even to name in one breath with the Bible would be a sin."
15. ऋषि दयानन्द, सत्यार्थप्रकाश, सप्तम सम्मुल्लास।
16. ऋषि दयानन्द, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, प्रश्नोत्तर विषय।
17. There is no monument of Greece or Rome more precious than the Rigveda.
18. "What extract from the Vedas I have read, fall on me like the light of higher and purer luminary which describes a loftier course through stratum -free from particulars, simple and universal", says Thoreau.
19. F.Max Muller says, " I remind you again that the Vedas contain a

great deal of what is childish and foolish though very little of what is bad and objectionable. ......many hymns are utterly meaning - less and insipid"

20. राहुल सांकृत्यायन, वैज्ञानिक भौतिकवाद, पृष्ठ १०४
21. A.C. Clayton, The Rigveda and Vedic Religion,Christian literature Society for India , London(1913)
22. Sir George O.Bart, Life and Letters of Lord Macaulay.
23 Monier Williams, Sanskrit English Dictionary.
24. This edition of mine and the translation of the Vedas, will hereafter tell to a great extent on the fate of India and on the growth of the millions of souls in that country. It is the root of their religion and to show them what the root is, I feel sure, 'the only way of up-rooting'all that has sprung from it during the last three thousand years.
25. The ancient religion of India is doomed and if Christianity does not step in, whose fault will it be ?
26. धर्मदेव विद्यामार्तण्ड, वेदों का यर्थाथ स्वरूप, पृष्ठ १६
27. "Come, O Vayu, these Somas are prepared. Drink of them. hear our invocation".-Sanskrit Texts, Volume II, p. 205
28. "Vayu pleasent to behold, approach, these libations are prepared for thee, drink of them; hear our invocations"- Rigveda Translation and Notes, Vol.I.
29. "For details, see Ram Parkash (Id.), Works of Pandit Guru Datta Vidyarthi, 1998, p. 54-57
30. अरविन्दु, वेद रहस्य, पृष्ठ २६
31. Swami Dayanand Saraswati was in the first place, India's eye opener to the wisdom of the Vedas. I know none in modern India who was so great a scholar as the Swami.
32. "In the matter of Vedic interpretation, I am convinced that whatever may be the final complete interpretation, Dayananda will be honoured as the first discoverer of the right clues. He has found the key is of the doors that time had closed and rent asunder the seals of imprisoned fountains".

-Aurobindo, Vedic Magazine, November,1916.

33. I maintain that to every body who cares for himself, for his ancestors, for his histotry, for his intellectual developement, a study of the Vedic literature is indispensible.

34. "The Veda is the fountain head of knowledge".- Vedic India.

35. "The Vedas contain many things not yet known to anybody, as they form a mine of inexhaustible literary wealth, that has still remained unexplored". N.B. Pavgee, The Vedic Fathers of Geology.

36. "Only the gaze of the clairvoyant directed upon the mysteries of the past, may reveal un-uttered wisdom which lies hidden behind these writings (The Vedas)". Materlink, The Great Secret, p. 44.

37. "We are justified, therefore, in concluding that the higher and purer conceptions of the Vedic Aryans were the results of a primitive Divine Revelation". Morris Philip, The Teachings of theVedas, p.23

38. F.Max Muller, Biographical Essays.

39. "The Rigveda deals with the theorms and experiments, while the process of preparing the reagents and apparatus is recorded in the Yajurveda which is infact, a laboratory guide".P.N. Gaur, Introduction to the Message of the 20th Century.

40. "Our present anatomical knowledge of the nervous system tallies so accurately with the literal description of the world given in the Rigveda that a question arises in the mind whether the Vedas are really religious books or whether they are books on anatomy and physiology of the nervous system." Rele, The Vedic Gods

41. From the Vedas are deduced the practical arts of surgery, medicines, dancing, archery and architect under which the system of mechanical art is included.

42. रामप्रकाश, डॉक्टर, यज्ञ–विमर्श, अनिता आर्ष प्रकाशन, पानीपत, पृष्ठ ६३–६४, १९९७

43. Ram Prakash(Ed.), Works of Pandit Guru Datta Vidyarthi, Samarpan Sodh Samasthan,4/42 Sector 5, RajenderNagar, Sahibabad (U.P.), pp. 58-60(1998)

44. रामप्रकाश, डाक्टर, यज्ञ–विमर्श, पृष्ठ ६०–६३.

लेखक परिचय

जन्म, अक्तूबर १६३६, ग्राम तंगौर (कुरुक्षेत्र), पिता श्री प्रभुदयाल जी। रसायन विज्ञान में एम०एस–सी० (ऑनर्ज), पी–एच० डी०, चार्ल्स विश्वविद्यालय एवं हैरोवस्की (नोबेल पुरस्कार विजेता) इंस्टीच्यूट ऑफ पोलेरोग्राफी, प्रॉग, चैकोस्लोवाकिया तथा यू०एस०ए० में विशेष अध्ययन/अनुसंधान ।

- पंजाब विश्वविद्यालय चण्डीगढ़ में रसायन विज्ञान के प्रोफेसर, पूर्व प्रोवाइस–चांसलर, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र (१६८१–८४) यूनेस्को फैलो (१६७१–७२), फुलब्राइट स्कॉलर (१६६१)
- विज्ञान, तकनीकी व इलेक्ट्रानिक्स राज्यमंत्री हरियाणा सरकार (१६६१–६३); सदस्य : हरियाणाा विधानसभा (१६६१–६६), पंजाब विश्वविद्यालय सीनेट (१६७२–) तथा सिण्डीकेट (१६७७–८०, ८५–६२) अध्यक्ष : पंजाब विश्वविद्यालय टीचर्स एसोसिएशन (१६७४–७६) पंजाब–चण्डीगढ़ विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय अध्यापक संगठनों की तालमेल समिति (१६७५–७६), हरियाणा हरिजन सेवक संघ (१६८३–८४) तथा हरियाणाा इन्दिरा कांग्रेस तिवारी (१६६४–६६) महामन्त्री : हरियाणा प्रदेश कांग्रेस आई (१६६७–)
- पाँच पुस्तकें तथा लगभग ६० मौलिक वैज्ञानिक शोधपत्र प्रकाशित
- चैकोस्लोवाकिया (१६७१–७२, ६०), आस्ट्रिया (१६७१), हंगरी (१६७१), जर्मनी (१६७२, ६०), स्विट्जरलैण्ड (१६७२–६६), बैल्जियम, फ्रांस, नीदरलैंड, रोमानिया तथा यूगोस्लाविया (१६७२), इंग्लैंड (१६७२,६१), कनांडा (१६६१), अमेरिका (१६६१), मॉरिशस (१६६८) आदि में अध्ययनार्थ /अनुसंधानार्थ/प्रचारार्थ प्रवास/भ्रमण ।
- अध्यापक, राजनीतिज्ञ, समाजसेवी, वक्ता, लेखक, सामाजिक मुद्दों के साथ गहरा जुड़ाव ।
- विशेष : पंजाब विश्वविद्यालय चण्डीगढ़ में प्रथम महर्षि दयानन्द चेयर की स्थापना कराई तथा तदर्थ पंजाब सरकार से ५ लाख रुपये का अनुदान प्राप्त किया ।
- स्थाई निवास : १६३४–३५, सैक्टर १३, अर्बन एस्टेट, कुरुक्षेत्र (हरियाणा)

आर्यसमाज मॉडल टाऊन, यमुनानगर के आर्थिक सहयोग से प्रकाशित

आर्यसमाज के पास विपुल साहित्य है लेकिन वह अत्यन्त मँहगा या अप्रकाशित होने के कारण आम पाठकों की पहुँच से दूर है । अथाह ज्ञान के भण्डार इस साहित्य को छोटी–छोटी पुस्तिकाओं की लगभग २५–२५ हजार प्रतियाँ छापकर व उन्हें पाठकों में निःशुल्क बांट कर पाठकों और साहित्य के बीच की इस दूरी को पाटने की हमारी योजना है । **सत्यार्थ प्रकाशन** की इस योजना के अन्तर्गत् जो व्यक्ति या संस्था जितनी भी प्रतियों का व्यय वहन करेगी उतनी प्रतियाँ उस व्यक्ति या संस्था के नाम से प्रकाशित की जाएगीं । **सत्यार्थ प्रकाशन** की यह पाँचवी प्रस्तुति है । आर्यसमाज के विभिन्न सिद्धान्तों एवं कार्यों पर आधारित प्रतिमास एक ऐसी लघुपुस्तिका प्रकाशित करने का हमारा प्रयास रहेगा ।

हर्ष का विषय है कि आर्यसमाज मॉडल टाऊन, यमुनानगर ने इस पुस्तिका की सात हजार प्रतियाँ छपवाई हैं । **सत्यार्थ प्रकाशन** समस्त पाठक वर्ग की ओर से इस पुण्य कार्य के लिए आर्यसमाज मॉडल टाऊन, यमुनानगर के सभासदों एवं अधिकारियों विशेषकर **श्री जगन्नाथ कपूर जी, श्री फूलचन्द सैनी जी, श्री मदन लाल वासुदेवा जी, श्री मनोहर लाल साहनी जी, श्री मनोहर लाल दीवान जी, श्री प्राणनाथ थापर जी, श्री शक्ति पाहुजा जी एवं श्री जितेन्द्र चन्ड्योक जी** का हार्दिक धन्यवाद करता है जो अहर्निश वेदप्रचार के पुण्य कार्य में सर्वात्मना संलग्न हैं । प्रभु से प्रार्थना है कि वेदप्रचार की यह भावना इनके हृदय में और बलवती होवे ।

डॉ० राजेन्द्र विद्यालंकार
सत्यार्थ प्रकाशन, कुरुक्षेत्र